दैनिक जागरण
निष्काम सेवा जीवन को निखारती है

राफेल पर फिर सुनवाई

राफेल सौदे पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले के खिलाफ दायर पुनर्विचार याचिकाओं की सुनवाई तय हो जाने से यह भी पता चल रहा है कि राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े गंभीर मामलों को राजनीतिक रंग देकर किस तरह न्यायपालिका के जरिये खींचने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। राफेल सौदे पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक यानी कैग की रपट भी आ चुकी है, जो यह कहती है कि यह सौदा संप्रग सरकार के मुकाबले करीब तीन प्रतिशत सस्ता रहा। इसके पहले खुद सुप्रीम कोर्ट ने इस सौदे में किसी तरह की गड़बड़ी से इन्कार किया था। इसके अतिरिक्त राफेल बनाने वाली कंपनी दासौ और फ्रांस सरकार की ओर से भी यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इस सौदे में गड़बड़ी के आरोप निराधार हैं, लेकिन शायद कुछ लोग तय कर चुके हैं कि उन्हें हर हाल में अपने राजनीतिक एजेंडे को आगे बढ़ाना है। इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि राफेल सौदे को चुनौती देने वाले लोग मोदी सरकार को पसंद न करने वाले नेता ही हैं। एक ओर कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी हैं जो देश भर में घूम-घूम कर झूठे तथ्यों के सहारे राफेल सौदे पर जनता को गुमराह करने में लगे हुए हैं दूसरी ओर यशवंत सिन्हा, अरुण शौरी और प्रशांत भूषण जैसे लोग हैं जो मोदी सरकार के प्रति अपनी नाराजगी के चलते इस नतीजे पर पहुंच गए हैं कि इस सौदे में गड़बड़ी हुई है। ये सभी बिना किसी तथ्यों के इस नतीजे पर भी पहुंच गए हैं कि इस सौदे की ऑफसेट नीति के तहत अनिल अंबानी को अनुचित लाभ मिला। हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने ऐसा कुछ भी नहीं पाया था, फिर भी मिथ्या आरोप मढ़ने का काम जारी है। यह सही है कि राफेल सौदे पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले में सरकार की ओर से दी गई जानकारी का उल्लेख सही तरह नहीं हुआ था, लेकिन यह भी साफ है कि यह समझने से जानबूझकर बचा जा रहा कि फैसले का आधार वह जानकारी नहीं जिसे छिपाने का हल्ला मचाया जा रहा है।

मोदी सरकार से खफा लोगों को राफेल सौदा रास न आना समझ आता है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि वे अपने असंतोष को जाहिर करने और अपनी राजनीति चमकाने के लिए सुप्रीम कोर्ट का इस्तेमाल करें। दुर्भाग्य से एक अर्से से यही हो रहा है। पिछले कुछ समय से सरकार के एक के बाद एक फैसलों को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती देने का जैसा सिलसिला कायम है वह हैरान करता है। सरकार के हर फैसले को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती देने की सुविधा देना तो एक तरह से शासन प्रक्रिया को पंगु करना ही है। कानूनी सक्रियता तभी तक उचित है जब तक वह अपनी हद पार करती न दिखे। आखिर ऐसा क्यों है कि कुछ वकीलों और संगठनों की करीब-करीब हर जनहित याचिका सुन ली जाती है? थोक के भाव में राजनीति प्रेरित जनहित याचिकाएं दायर होना अच्छा नहीं। यह न तो शासन व्यवस्था के लिए अच्छा है और न ही खुद सुप्रीम कोर्ट के लिए। बेहतर हो सुप्रीम कोर्ट यह भी देखे कि उसका बेजा इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति कैसे थमे?

सही दिशा में बढ़ें

शांत समझे जाने वाले हिमाचल प्रदेश में अब ऐसी घटनाएं सामने आ रही हैं जो हर किसी को अशांत करती हैं। यह चिंताजनक है कि हिमाचल के कई लोग सही और गलत में भेद नहीं कर पा रहे हैं। किसी की गलती का खामियाजा बेकसूर लोगों को भुगतना पड़ रहा है। बीते मंगलवार को मंडी जिला के बल्ह क्षेत्र की गलमा पंचायत के मैहसड़ा के जंगल में एक बेकसूर व्यक्ति की गोली लगने से मौत हो गई। उसका कसूर इतना था कि वह पैदल घर जा रहा था। मारा गया व्यक्ति मिस्त्री था। वह एक ठेकेदार के पास मुंशी का भी काम करता था। काम समाप्त होने के बाद वह जंगल के रास्ते अपने घर जा रहा था कि अचानक उसे सिर पर गोली लग गई। तत्काल उसके दो साथी उसे अस्पताल भी ले गए, लेकिन उसकी मौत हो गई। घटना के बाद जंगल में गोली चलाने का आरोपित शिकारी गायब हो गया, लेकिन एक बेकसूर बिना वजह मारा गया। इससे पहले भी जंगलों में अवैध शिकार की शिकायतें सामने आती रही हैं। कुछ समय पहले हमीरपुर जिले में भी इस तरह का एक मामला सामने आया था जहां एक लड़की को छर्रे लगे थे। दुख की बात है कि इस तरह की घटनाएं राज्य के अन्य हिस्सों में भी सामने आती रही हैं। ऐसी घटनाओं का बार-बार होना और कोई सबक नहीं सीखना गंभीर मामला है। जब जंगलों में शिकार किया जाना प्रतिबंधित है तो क्यों लोग इस तरह का गैरकानूनी कार्य कर रहे हैं। लोगों को समझना होगा कि एक छोटी-सी भूल से किसी की जान जा सकती है, लेकिन फिर भी इसे करना क्यों बंद नहीं करते हैं? सरकार और संबंधित विभाग को जंगलों में शिकार करने वालों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई करनी चाहिए ताकि फिर कोई व्यक्ति इस तरह का काम करने से पहले सौ बार सोचे। वन विभाग के अधिकारियों को ऐसे स्थान चिह्नित करने चाहिए जहां ऐसी गतिविधियों को अंजाम दिया जाता है। इन क्षेत्रों में नियमित गश्त भी की जानी चाहिए। उन लोगों को भी चिह्नित किया जाना चाहिए जो शिकार करते हैं। सभी को चाहिए कि हमेशा सही दिशा में आगे बढ़ें तभी सफलता मिलती है। गलत काम का नतीजा हमेशा नुकसानदेय होता है। एक छोटी-सी लापरवाही से किसी की जान चली जाए तो संबंधित व्यक्ति खुद को उम्रभर कोसता रहता है।

नीतिविहीनता से जूझता कश्मीर संकट

कैप्टन आर विक्रम सिंह

जब हम कश्मीर पर पाकिस्तान से वार्ता करते हैं तो आम कश्मीरी के मन में यह सवाल जीवित हो जाता है कि अभी समस्या मौजूद है

इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं कि जैश-ए-मोहम्मद द्वारा अंजाम दिए गए पुलवामा हमले के पीछे पाकिस्तानी सेना का हाथ है। भारत के कड़े रुख के बाद पाकिस्तानी प्रधानमंत्री इमरान खान वीडियो संदेश में सुबूत मांगते दिखे, लेकिन उन्हें इस घटना पर कोई अफसोस नहीं है। इधर हमले का जवाब न देने की सुविधा के लिए हमारे सेक्युलर विशेषज्ञों द्वारा 'क्रॉस बॉर्डर टेररिज्म' और 'नॉन स्टेट एक्टर्स' जैसे शब्द गढ़ लिए गए हैं। इन्हीं के सहारे अतीत में सरकारों ने कार्रवाई न कर चेहरा छिपाने की गुंजाइश बनाई थी। पुलवामा में 40 जवानों की शहादत ने हमें कश्मीर नीति पर पुनर्विचार करने को बाध्य किया है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने सेनाओं को खुली छूट दी है। इसी के साथ भारत की जबरदस्त राजनयिक मुहिम जारी है। आजादी के साथ ही कश्मीर की समस्या प्रारंभ हो गई थी। 1947 में पाकिस्तान ने एक तिहाई कश्मीर पर कब्जा कर लिया। हमारे नेतृत्व ने अपनी ही पहल पर सुरक्षा परिषद द्वारा प्रायोजित युद्धविराम स्वीकार कर लिया। फिर ऐसे संतुष्ट हो गया जैसे वह कश्मीर हमारा था ही नहीं। प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू जनमत संग्रह द्वारा कश्मीर के भाग्य के निर्णय का प्रस्ताव संयुक्त राष्ट्र में दे ही चुके थे, जैसे महाराजा हरि सिंह का भारतीय संघ में विलय-पत्र कोई रद्दी का टुकड़ा हो। सरदार पटेल ने उन्हें जनमत संग्रह की घोषणा से रोकने की भरसक कोशिश की, लेकिन उन्होंने एक न सुनी। फिर नेहरू ने कश्मीर को संयुक्त राष्ट्र और शेख अब्दुल्ला के हवाले कर दिया। यहीं से कश्मीर की नीतिविहीनता का काल प्रारंभ होता है।

जनमत संग्रह का प्रस्ताव भारत में कश्मीर के विलय के विरुद्ध पाकिस्तान और फिर अलगाववादियों का सबसे बड़ा हथियार बना जो स्वयं नेहरू ने उसे उपलब्ध करा दिया था। 21 सितंबर, 1960 को सिंधु जल समझौते पर हस्ताक्षर के बाद मुरी के खूबसूरत हिल स्टेशन में अयूब खान ने कश्मीर का जिक्र किया। नेहरू ने कहा कि जो युद्ध विराम रेखा है उसे ही अंतरराष्ट्रीय सीमा स्वीकार करना उचित है। अयूब ने कहा कि यह रेखा तो सिर्फ सैन्य कब्जे के आधार पर बनी है। बाद में 1963 में भुट्टो-स्वर्ण सिंह की छह चक्रीय वार्ता में कश्मीर विवाद खत्म करने के लिए कश्मीर की लगभग 1500 वर्ग मील भूमि पाकिस्तान को बतौर उपहार उपलब्ध कराने का प्रस्ताव दिया गया जो भुट्टो ने स्वीकार नहीं किया। कश्मीर को बांटना, कश्मीर पर भारत का हक कमजोर करना था। नेहरू कश्मीर के गलत पैरोकार सिद्ध हुए। कश्मीर का एकीकरण उनका लक्ष्य नहीं बना।

जब सुरक्षा परिषद में हमारी 'गुटनिरपेक्ष' नीति से खार खाए बैठे अमेरिका और ब्रिटेन ने कश्मीर विवाद को बुरी तरह उलझा दिया तो नेहरू को अपनी गलती का अहसास हुआ। 1953 में अलगाववादी तेवर दिखाने पर उन्हें शेख अब्दुल्ला को नजरबंद करना पड़ा। इन छह वर्षों में ही नेहरू की कश्मीर नीति का जुलूस निकल चुका था। फिर भी इस असफल नीति से उत्पन्न हालात को हम 1965 के अनिर्णित युद्ध के उपरांत लगातार ढोते रहे। यथास्थिति में परिवर्तन सैन्य समाधान द्वारा ही संभव था, लेकिन हम अहिंसा की दुहाई देते रह गए और पाक आक्रामक रहा। 1946 में ही बतौर अंतरिम प्रधानमंत्री नेहरू ने कहा था कि उन्हें सेनाओं की कोई जरूरत नहीं, पुलिस से ही देश की रक्षा हो जाएगी, दुनिया में हमारा कोई शत्रु नहीं है। वास्तव में अहिंसक आंदोलन से आजादी तो मिली, लेकिन हमने अहिंसा को हर मर्ज की दवा मान लिया। 1962 की शर्मनाक पराजय का कारण बनी हमारी 'फॉरवर्ड पॉलिसी' सैन्य रणनीति में सत्याग्रह के प्रयोग की तरह ही थी।

फिर 1965, 1971 और 1999 के युद्ध भारत के लिए बड़े अवसर लेकर आए। मजबूरी यह थी कि हमारा नेतृत्व अपनी नीतिगत कमजोरियों से मुक्त नहीं हुआ था। 1965 में लाल बहादुर शास्त्री ने दूसरा मोर्चा खोला तो जरूर, लेकिन कश्मीर का कोई लक्ष्य तय नहीं था। 1971 के बांग्लादेश युद्ध में कश्मीर समस्या के स्थाई समाधान का बढ़िया मौका था। हमारी सेनाओं ने बांग्लादेश तो मुक्त करा लिया, लेकिन पाकिस्तान सुरक्षित रहा और कश्मीर समस्या ज्यों की त्यों रही। न हाजीपीर वापस आया न छंब, फिर भी इंदिरा गांधी ने एकतरफा युद्धविराम की घोषणा कर दी। अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा लाहौर बस यात्रा के तत्काल बाद पाकिस्तान सेना ने कारगिल की सरहद पर चढ़ाई कर दी। यदि हमारा नेतृत्व चाहता तो स्कर्दू सहित उत्तरी कश्मीर का एक बड़ा हिस्सा जवाबी कार्रवाई में मुक्त हो जाता। संसद पर हुए आतंकी हमले, फिर मुंबई हमले के बाद भी सैन्य प्रतिक्रिया देने में हम विफल रहे। जो सोच 1962 में बढ़ती हुई चीनी सेनाओं पर हवाई सेना के उपयोग की हिम्मत नही जुटा पाई वही सोच हमारी रक्षानीति की मार्गदर्शक बनी रही। हम पाकिस्तान को सुबूतों का डोजियर सौंपकर असंभव सी उम्मीद करते रहे कि वह गुनहगारों को सजा देगा। पाकिस्तान को कभी भी भारत पर हमला करने में गुरेज नहीं हुआ, लेकिन भीरुता की भावना से ग्रसित हमारा नेतृत्व व्यर्थ की वार्ताओं की आड़ में स्वयं को सुरक्षित पाता रहा।

अवधेश राजपूत

उड़ी में आतंकी हमले के जवाब में पहली बार यह हुआ कि शत्रु सीमा में घुसकर पाकिस्तान को उसका जवाब दिया गया। वाजपेयी के इंसानियत-जम्हूरियत-कश्मीरियत के आदर्श को जमीन पर उतारने के लिए पीडीपी के साथ भाजपा की भागीदारी लीक से हटकर एक साहसिक प्रयास थी। विकास को अवसर देने की यह कोशिश नाकाम इसलिए हुई, क्योंकि पीडीपी नेतृत्व कश्मीर को भारत की मुख्यधारा में लाने के लिए गंभीर नहीं था। पुलवामा हमले से आतंकियों ने अपना तात्कालिक उद्देश्य तो पूरा कर लिया। अब उनकी कोशिश स्थानीय भर्ती मे तेजी लाने की होगी। ऐसे में अब हाईवे सुरक्षा को हाईटेक बनाना बहुत जरूरी है। सेनाओं, सशस्त्र बलों के लिए जम्मू से कश्मीर घाटी तक, राजौरी से गुलमर्ग का वैकल्पिक मार्ग युद्धस्तर पर विकसित करना होगा।

कश्मीर समस्या के स्थाई समाधान में हमारी नीतिविहीनता ही मुख्य बाधा रही है। जब हम कश्मीर पर पाकिस्तान से वार्ता करते हैं तो आम कश्मीरी के मन में यह सवाल जीवित हो जाता है कि अभी समस्या मौजूद है और कश्मीर का भविष्य और उनकी राष्ट्रीयता अनिर्णित है। कश्मीर का विलय भारत में हो चुका है और वह हमारा अटूट अंग है तो पाकिस्तान से वार्ता आखिर किसलिए? इन वार्ताओं की वजह से अलगाववादी सोच यह उम्मीद करने लगती है कि कश्मीर की आजादी संभव है। नियंत्रण रेखा को अंतरराष्ट्रीय सीमा मानने की नेहरूकालीन नीति को 1972 में इंदिरा गांधी और भुट्टो के शिमला समझौते के दौरान भी अलिखित रूप से स्वीकार किया गया था। एक विजयी देश पराजित देश के समान व्यवहार कर रहा था।

पुलवामा हमले ने देश की चेतना को झकझोर दिया है। राष्ट्रीय नेतृत्व से धारा 370 और 35ए को खत्म करने की अपेक्षा की जा रही है। इससे कश्मीर में शांति व्यवस्था की अस्थाई समस्या उत्पन्न होगी, लेकिन इससे स्थाई समाधान की एक खिड़की खुलेगी। नीतियां राष्ट्रहित की वाहक होती हैं। हमारा यह नीतिगत दीवालियापन धारा 370 के संशोधन और संपूर्ण कश्मीर के एकीकरण के नीतिगत लक्ष्य से ही समाप्त होगा।

(लेखक पूर्व सैनिक एवं पूर्व प्रशासक हैं)

response@jagran.com

पाकिस्तान से निपटने के तौर-तरीके

डॉ. एके वर्मा

संकट के समय हमें इसके लिए भी ज्यादा प्रयास करना होगा कि देश में सामाजिक सद्भाव कायम रहे

असहमति की संवैधानिक आधारशिला पर स्थापित भारतीय लोकतंत्र की एक बड़ी खूबी यह है कि जब भी देश पर कोई गंभीर संकट आता है तो पूरा देश सुरक्षा और प्रतिरक्षा के मुद्दों पर एक स्वर में बोलता है। उड़ी, पठानकोट के जख्म से हम उबरे भी नहीं थे कि पाकिस्तान प्रायोजित पुलवामा आतंकी हमले ने देश को शोक, आक्रोश, उत्तेजना और प्रतिशोध की ज्वाला में धधका दिया है। एक स्वर में पाकिस्तान से बदले की मांग उठ रही है जो अत्यंत स्वाभाविक है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने स्पष्ट शब्दों में भारत के कड़े रुख का इजहार कर दिया है और सेना को इसके लिए अधिकृत भी कर दिया है, लेकिन इस कठिन अवसर पर हम सभी को जोश में होश नहीं खोना है। क्या होगा सेना का जवाब, इसे हमें मीडिया में चर्चा का विषय नहीं बनाना चाहिए। नीति कहती है कि शत्रु पर उस समय प्रहार करना चाहिए जब वह उसका पूर्वानुमान न लगा सके। इस समय पाकिस्तान संभावित भारतीय प्रतिक्रिया के लिए पूरी तरह तैयार होगा। कोई भी कार्रवाई करने से पूर्व हमें आकलन करना जरूरी है कि किस प्रकार की कार्रवाई से हमें न्यूनतम और पाकिस्तान को अधिकतम नुकसान हो।

देश के विभिन्न शहरों और कस्बों में हमारे लिए भावनात्मक एवं उत्तेजक प्रतिक्रिया करना आसान है, लेकिन सीमा पर तैनात वीर जवानों के बलिदानों का मूल्य चुकाना कठिन ही नहीं, नामुमकिन होता है। प्रत्येक युद्ध का एक अंत होता है और फिर दोनों ओर स्थितियां धीरे-धीरे सामान्य हो जाती हैं, लेकिन शहीदों के परिवार जिस अपूरणीय क्षति के साथ जीवन जीने को विवश होते हैं, उन्हें समाज भूल जाता है। वर्ष में एक बार हम सब उन शहीदों को याद जरूर करते हैं, लेकिन शहीदों के परिवारों के लिए परिस्थितियां फिर कभी भी सामान्य नहीं होतीं।

यह भारत का दुर्भाग्य है कि उसे स्वतंत्रता के साथ-साथ पाकिस्तान जैसा एक नया और दुष्ट पड़ोसी भी मिला। शुरू से ही पाकिस्तान का रुख बहुत ही शत्रुतापूर्ण एवं नकारात्मक रहा है। 1971 में पूर्वी-पाकिस्तान को खोने के बाद से उसकी पूरी रणनीति छद्म युद्ध की हो गई। यह अफसोस की बात है कि पिछले 50 वर्षों में भारत ने उसकी कोई काट नहीं खोजी। हम हमेशा पाकिस्तान के प्रति मित्रतापूर्ण और सकारात्मक रुख रखते रहे और इस उम्मीद में जीते रहे कि शायद पाकिस्तान का दृष्टिकोण बदल जाए। बदले में पाकिस्तान हमेशा हमें जख्म देता रहा। कभी सैन्य हमले से तो कभी आतंकियों की वारदातों से, लेकिन भारत के धैर्य का यह एक परिणाम तो आया है कि पाकिस्तान को लेकर पूरे विश्व का नजरिया बदल गया है। आज ज्यादातर देश उसे आतंक को प्रश्रय देने वाले देश के रूप में देखते हैं जो पाकिस्तान के लिए न केवल शर्म की बात है वरन वह उसे आर्थिक बदहाली की और भी ले गई है।

हालांकि हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि पाकिस्तान में वास्तव में कई पाकिस्तान हैं। वहां की सरकार, सेना, आइएसआइ और आतंकवादियों के तमाम संगठनों के अलावा एक पाकिस्तान वहां की जनता का भी है जो भारत के प्रति उनसे भिन्न दृष्टिकोण रखता है, जो भारत की उपलब्धियों को लेकर चकित है और जो भारत के विकास को प्रत्यक्ष देखना चाहती है, लेकिन यह पाकिस्तान हम कभी देख ही नहीं पाते। पाकिस्तानी सरकार के कार्यों, अखबारों और टीवी में वह पाकिस्तान कभी दिखाई नहीं देता। इसलिए हमें पाकिस्तान की नापाक हरकतों का प्रत्युत्तर देने के लिए इसका बहुत ध्यान रखना होगा कि जहां हम पाकिस्तानी सरकार, सेना, आइएसआइ और आतंकवादियों को चोट पहुंचाएं वहीं पाकिस्तान की अमन पसंद जनता का भारत के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण न खोएं। यह इसलिए और भी जरूरी है कि यदि कभी आगे चल कर वृहत्तर भारत की अवधारणा सार्थक होती है तो पाकिस्तानी जनता का भारतीय जनता और भारतीय लोकतंत्र से ताल-मेल भी बनाया जा सके।

जब पुलवामा जैसे कांड होते हैं तब हम सबके सब्र का बांध जैसे टूट सा जाता है। पूरा देश सेना के संभावित कदमों पर चर्चा करता रहेगा, लेकिन यह जरूर है कि सेना को त्रिआयामी रणनीति अपनानी होगी। उसे तात्कालिक, अल्पकालिक और दीर्घकालिक कदम उठाने होंगे। पाकिस्तान के बारे में और भी कई संवेदनशील कारक हमारे देश के अंदर और बाहर मौजूद हैं। उनकी अनदेखी भी नहीं की जा सकती।

पाकिस्तानी लोकतंत्र तो एक छद्म लोकतंत्र है जिसमें सरकार पूर्णतः सेना और आतंकियों के चंगुल में है, लेकिन भारत को तो विशुद्ध लोकतांत्रिक तरीके से ही पाकिस्तान और उससे जुड़े अन्य अनेक पहलुओं से निपटना है। लोकतंत्र की जरूरत है कि सरकार और सेना के इस प्रयास को जनता के सभी वर्गों का पूर्ण समर्थन हो। भावनाओं की अभिव्यक्ति में प्रायः कुछ अति-उत्साही युवक और संगठन तोड़-फोड़ और हिंसक विरोध-प्रदर्शन पर उतारू हो जाते हैं जिसमें वे अपने ही साधनों को नुकसान पहुंचाते हैं और लोकतांत्रिक व्यवस्था पर एक प्रश्न-चिन्ह लगा देते हैं। हमें इसमें से बदलाव करना होगा। अपने विरोध और प्रतिक्रिया को सकारात्मक बनाना होगा। इसके लिए हमें ज्यादा काम करना होगा। सामाजिक सद्भाव कायम रखना होगा। अपनी आमदनी का एक हिस्सा शहीदों के लिए बने कोष में लगातार दान करना होगा और गंभीर एवं शालीन विमर्श द्वारा पाकिस्तान जैसी समस्या का स्थाई समाधान भी ढूंढ़ना होगा।

चूंकि प्रधानमंत्री ने पहले ही कहा है कि 130 करोड़ देशवासियों का खून खौल रहा है इसलिए संकट की इस घड़ी में हमसे कोई भी ऐसा काम न करे जिससे समाज के किसी भी वर्ग में उपेक्षित या असहज होने का भाव आए। हां, यह जरूर है कि हमें राष्ट्र विरोधी ताकतों और विदेशी एजेंटों से सावधान रहने की जरूरत होगी। यह इसलिए और भी उल्लेखनीय है, क्योंकि लोकसभा चुनाव सिर पर हैं। यह भी अच्छा है कि विपक्षी दल चुनावी नफा-नुकसान को इस राष्ट्रीय संकट से नहीं जोड़ रहे हैं। जहां अमेरिका में सरहद की समस्या पर राष्ट्रपति को विपक्षी डेमोक्रेटिक पार्टी के विरोध के चलते आपातकाल लगाना पड़ा वहीं भारत में सरहद पर उपजी समस्या के समर्थन में प्रधानमंत्री मोदी को संपूर्ण विपक्ष का पूरा सहयोग मिला। अब देखना है कि सरकार राजनयिक, सैनिक, आतंकी, वैश्विक, आर्थिक, राजनीतिक और अन्य अनेक पहलुओं पर भविष्य में किस तरह की तात्कालिक, अल्पकालिक और दीर्घकालिक रणनीतियां अपनाती है जिससे पाकिस्तान की रोज-रोज की किच-किच से हमें निजात मिल सके और हम विकास एवं राष्ट्र-निर्माण के काम में शांति से मशगूल हो सकें।

(लेखक सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ सोसायटी एंड पॉलिटिक्स के निदेशक हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

क्रोध उपवास

उपवास की मान्यता हर धर्म में सदियों से रही है। गौतम बुद्ध से लेकर महात्मा गांधी तक उपवास के माध्यम से स्वयं को मजबूत बनाते थे। त्योहारों से जुड़े उपवास तो लोग रखते ही हैं, लेकिन इसके साथ-साथ उन मनोविकारों का भी उपवास करना अत्यंत अनिवार्य है जो व्यक्ति को गर्त की ओर ले जाते हैं। क्रोध भी इनमें से एक है। श्रीमद्भागवत गीता में कहा गया है कि 'क्रोध से मूढ़ता उत्पन्न होती है, मूढ़ता से स्मृति भ्रांत हो जाती है, स्मृति भ्रांत हो जाने से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि नष्ट होने पर प्राणी स्वयं नष्ट हो जाता है।' इसलिए क्रोध को जहर की संज्ञा दी गई है। इसलिए इससे बचना अत्यंत आवश्यक है।

इससे बचने का सबसे सरल उपाय है क्रोध उपवास। अक्सर कई लोग स्वयं को फिट रखने के लिए सप्ताह में एक बार भोजन का उपवास रखते हैं। उसी तरह सप्ताह में किसी भी एक दिन क्रोध उपवास रखा जा सकता है। इस दिन व्यक्ति को यह संकल्प करना पड़ता है कि चाहे कुछ भी हो जाए आज क्रोध पर नियंत्रण करना है। यदि क्रोध आ जाए तो समझो उपवास टूट गया। क्रोध उपवास से व्यक्ति के अंदर थोड़ा-थोड़ा नियंत्रण उत्पन्न होने लगता है। फिर धीरे-धीरे यह एक आदत बन जाता है। किसी भी कार्य को यदि 21 दिन तक किया जाए तो वह आदत बन जाता है। इसी तरह अभ्यास से क्रोध को नियंत्रित करना ज्यादा कठिन नहीं है। एक बार इस अभ्यास को करने में अवश्य कठिनाई आ सकती है, लेकिन कठिनाइयां तो हर उस कार्य को करने में आती हैं जो पहली बार किया जाता है। जब योग का अभ्यास किया जाता है तो पहले दो-तीन दिन पूरा शरीर दर्द से छटपटाने लगता है। एक सप्ताह बाद वह दर्द गायब हो जाता है और कठिन योग व्यक्ति के जीवन का एक अंग बन जाता है जो उसको स्वस्थ रखता है।

क्रोध को नियंत्रित करने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाने चाहिए। जैसे-क्रोध के समय मौन रहने से असंख्य दुर्घटनाएं टल जाती हैं। इसलिए मौन रहें। दूसरों पर दोषारोपण करने से बचें। प्रत्येक कार्य की जिम्मेदारी स्वयं लेने की आदत डालें। यह जहां व्यक्ति के अंदर नेतृत्व की भावना उत्पन्न करती है वहीं उसे क्रोध से भी मुक्त करती है। सहज भाव से प्रशंसा करें। प्रशंसा का भाव व्यक्तियों के क्रोध को नियंत्रित करता है। सकारात्मक सोच बनाए रखें।

रेनू सैनी

सजने-संवरने की चाहत

मनुष्य में बनने-संवरने की चाहत बहुत पुरानी है। श्रृंगार से जुड़ी तमाम प्राचीन परंपराएं हर समाज-संस्कृति में रही हैं और लोकजीवन में इनकी छाप कायम है। श्रृंगार की भावना उद्दीप्त होने के पीछे अन्य कारक का होना आवश्यक है, चाहे वह प्रकृति हो, कोई मनुष्य हो या स्वयं की छवि। यह सच है कि दूसरे को देखकर भी श्रृंगार की इच्छा जागती है, पर सजने की भावना सर्वप्रथम तो मनुष्य में तभी जागी होगी जब उसने खुद का प्रतिबिंब निहारा होगा।

मनुष्य के पास जैसे भोजन के विविध विकल्प हैं वैसे खुद की छवि देखने के लिए हजारों वर्षों के विकास क्रम के बावजूद बहुत ज्यादा विकल्प कभी नहीं रहे। आज से करीब आठ हजार साल पहले से मनुष्य ने शीशे में अपनी छवि देखनी शुरू की। उससे पहले तक वह स्थिर जल के कुंड में ही अपनी छवि देख पाता था। लाखों वर्षों से उसके पास यही जरिया था। आज जिसे हम शीशा कहते हैं उसका आविष्कार आज से करीब चार हजार साल पहले मिस्र में अनायास हुआ था। ईसा से करीब छह हजार साल पहले से मनुष्य चमकीले ज्वालामुखी पत्थरों में अपनी छवि देखा करता था। शीशा शब्द बना है सिक्ष्य से, जिसका मतलब है देखा हुआ, दर्शित। संस्कृत में एक शब्द है साक्षिन् जिसका अर्थ होता है दृष्टा अर्थात जो देख रहा हो। हिंदी में आम तौर पर इसका रूप साक्षी है जिसका अभिप्राय गवाह, चश्मदीद से होता है। कबीर के पदों में साखियां बहुत प्रसिद्ध हैं। साखी शब्द भी साक्षी का ही अपभ्रंश है। परम आत्मज्ञान की शिक्षा देने वाले कबीर के पदों को साखी इसलिए कहा जाता है, क्योंकि कबीर स्वयं जिन अनुभवों के साक्षी हुए उसे ही उन्होंने लोगों को बतलाया है। स्वानुभूत ज्ञान, साक्षात् दर्शन ही साखी है। साक्षी से ही बना है संस्कृत का सिक्ष्य शब्द जिसका अर्थ है देखा हुआ। हिंदी, उर्दू का शीशा शब्द इसी का अपभ्रंश है।

सजने-संवरने की भावना सर्वप्रथम तो मनुष्य में तभी जागी होगी जब उसने खुद का प्रतिबिंब निहारा होगा

मजे की बात यह की हिंदी शब्दकोशों में शीशा फारसी मूल का शब्द है न कि संस्कृत का। भारत में अरबी-फारसी के प्रभाव से पहले दर्पण के लिए शीशा की जगह कांच शब्द का ही प्रचलन था। शीशा शब्द से बने जितने भी शब्द हिंदी में प्रचलित हैं उनमें से ज्यादातर फारसी मिजाज से बने हैं और मुहावरों का असर रखते हैं जैसे शीशाबाज या शीशाबाजी। अर्थात धूर्त, छली, मक्कार या मक्कारी। बात यह कि शीशा शब्द में मूल भाव तो था दर्पण का, मगर कालांतर में शीशा दर्पण का पर्याय भी बना और कांच का भी। इसीलिए शीशा से शीशी शब्द बना जिसका अर्थ होता है छोटी बोतल। गौरतलब है कि अनोखीबात करने या दिखावा करने, झगड़ा-फसाद करनेवाले को शोशाबाज या शोशाबाजी कहा जाता है।

एक प्रसिद्ध मुहावरा है, शीशे में उतारना। जिसका मतलब होता है किसी पर जबर्दस्त प्रभाव डालना या अपना प्रभाव जमाना। पुराने जमाने में फारस में कांच पर चित्रकारी की कला बड़ी मशहूर हुई थी। फाइन आर्ट के इन नायाब नमूनों में असली और नकली का फर्क कर पाना खासा मुश्किल काम था। कलाकारों की खासियत यह थी कि भाव-भंगिमा, यहां तक कि नायिका को विशिष्ट समय में हुई हरारत का असर तक वे अपने चित्र में दिखाते थे। इस कलात्मक जादूगरी के लिए ही शीशे में उतारना मुहावरा चला।

(साभार : शब्दावली ब्लॉग में अजित वडनेरकर)

मेलबाक्स

कैसे लड़ें पाकिस्तान से

18 फरवरी, 2019 के अंक में 'हथियार से नहीं विचार से लड़ने की जरूरत' शीर्षक से शंकर शरण का एक अति महत्वपूर्ण विषय पर लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने कहा है कि पाकिस्तान पर सैनिक कार्रवाई करके विजय नहीं प्राप्त की जा सकती, क्योंकि पाकिस्तान हथियार से नहीं विचार से बना है। अतः उसे विचार से ही हराया जा सकता है। उन्होंने आगे यह भी कहा कि सिमी, इंडियन मुजाहिदीन और हुर्रियत जैसे तमाम संगठन जिस काम में लगे हैं उसे हम देखकर भी अनदेखा कर रहे हैं। जिस दिन हम इसका सामना करना शुरू कर देंगे उसी दिन से हमारी स्थाई जीत आरंभ होगी। मेरा मानना है कि ये संगठन जिस तरीके से अपना काम कर रहे हैं वह तरीका अपनाना हमारे लिए न तो उचित है और न ही संभव। मेरा निवेदन है कि लेखक यह बताने की कृपा करें कि सरकार को इन संगठनों का सामना किस प्रकार करना चाहिए? लेखक ने सही कहा है कि यह मूलतः वैचारिक, असैनिक तथा अहिंसक युद्ध है, जितना पाकिस्तान से उतना ही भारत को अपने अंदर भी इससे लड़ना होगा। किंतु उन्होंने इस लड़ाई की रूपरेखा के विषय में कुछ नहीं कहा है। इसके अभाव में उनके लेख का उद्देश्य पूरा नहीं हो सका है। अतः शंकर शरण जी से निवेदन है कि कृपया आने वाले दिनों में 'पाकिस्तान से लड़ने का सही तरीका' शीर्षक से भी एक लेख लिखने का कष्ट करें।

राजेंद्र कुमार श्रीवास्तव, इलाहाबाद

अंग्रेजी वर्चस्व से दम तोड़ती भारतीय भाषाएं

अतुल कोठारी ने अपने आलेख 'समझनी होगी मातृभाषा की महत्ता' में भारतीय भाषाओं को संरक्षित करने का जो सुझाव दिया है, वह उचित है, क्योंकि भाषा मानव सभ्यता को आगे ले जाने का सशक्त माध्यम है और हर व्यक्ति का अपनी मातृ-भाषा से विशेष लगाव होता है। एक सुशिक्षित और अंग्रेजी दा व्यक्ति भी अपने परिवेश के बीच पहुंचकर स्वयं के मनोगत भावों को अपनी मातृ-भाषा में बड़ी सहजता से व्यक्त करता है। मातृ-भाषा का यह स्वाभाविक प्रस्फुटन ही उसकी महत्ता का परिचायक है, पर भारत के संदर्भ में मातृ-भाषा की यह महत्ता केवल व्यक्ति विशेष तक सिमट कर रह गई है। स्वतंत्रता के बाद यदि इस देश का राजनीतिक नेतृत्व चाहता तो भारत को एक राष्ट्र-भाषा दे सकता था, लेकिन अपने राजनीतिक हितों को साधने के लिए तत्कालीन नेतृत्व ने भारत की राष्ट्र-भाषा जैसे महत्वपूर्ण विषय को इसलिए उलझाए रखा, क्योंकि वह हिंदी, उर्दू सहित अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के विवाद में पड़कर स्वयं की राजनीतिक जमीन को कमजोर नहीं करना चाहता था। इसके लिए सर्वसुलभ अंग्रेजी भाषा को भारत की राजभाषा का विकल्प बनाकर राष्ट्र-भाषा के महत्वपूर्ण मुद्दे को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। अंग्रेजी के वर्चस्व हेतु शहरी सभ्यता के बीच अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों का जाल बिछने लगा। दूसरी ओर महात्मा गांधी के स्वदेशी भाषा के विचार को हवा देने के लिए ग्रामीण स्तर पर हिंदी माध्यम के सरकारी स्कूल संचालित करके कांग्रेस सरकार ने बड़ी चालाकी से हिंदी को ग्रामीण अंचल की भाषा और अंग्रेजी को शहरी सभ्यता के आभिजात्य वर्ग की भाषा बना दिया। भाषाई स्तर पर दोहरे मानदंडों का दंश यह देश आज भी झेल रहा है।

डॉ. विष्णु प्रकाश पाण्डेय, अलीगढ़

विशेष पहचान दिलाती है मातृभाषा

अतुल कोठारी ने अपने आलेख 'समझनी होगी मातृभाषा की महत्ता' के माध्यम से भारत के विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों में बोली जाने वाली भाषाओं के महत्व और उनके प्रति प्रगाढ़ सम्मान को उजागर किया है। व्यक्ति जिस जगह जन्म लेता है या जिस जगह से संबंध रखता है, वहां बोली जाने वाली भाषा उसकी मातृभाषा तो होती ही है, परंतु जिस भाषा को समझने और उसके माध्यम से अपने विचारों का आदान-प्रदान बोलकर या लिखकरा सहजता से किया जा सके, उसे भी मातृभाषा की श्रेणी में रखा जा सकता है। जिस तरह एक मां अपने बच्चों का पालन-पोषण अच्छे से करती है, उसी प्रकार मातृभाषा भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को संपूर्ण रूप से निखारने में मदद करती है। मातृभाषा पढ़ने, लिखने और बोलने के अतिरिक्त, व्यक्ति को भावनात्मक स्तर पर भी जोड़ती है। मातृभाषा व्यक्ति के सामाजिक, मानसिक और व्यावहारिक विकास में भी सहायक है। वैज्ञानिकों का मानना है कि एक से अधिक भाषा सीखने से मानसिक विकास तेजी से एवं संपूर्ण तरीके से होता है। लोगों को यह समझना चाहिए कि मातृभाषा किसी भी व्यक्ति को विशेष पहचान दिलाती है, इसलिए उसका संरक्षण करना सभी देशवासियों का कर्तव्य है।

सौरभ पाठक, ग्रेटर नोएडा

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग,रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।